ज्य ललचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन नंबर: LA ३४२, जामनगर
स्मयसार गाथा ३७३-३८२
Version 1
दिनांक: १४-९-१९९१ , पर्युषण पर्व-उत्तम मार्दवधर्म

ये दशलक्षणी पर्व पर्वाधिराज के मांगलिक दिन हैं। ये आत्मा की आराधना करने के दिन हैं। अनंतकाल से स्वयं अपनी विराधना की है। पर की विराधना तो की ही नहीं जा सकती । लेकिन स्वयं स्वयं को भूल जाना, स्वयं को लक्ष में न लेना, शुद्धात्मा को ज्ञान और श्रद्धा में न लेना, उसके जैसा कोई दोष अर्थात् अपराध दुनिया में नहीं है। अनंत दुःख का कारण है। अपने को भूलकर पर को अपना मानना ऐसी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, ऐसी अवस्था आत्मा की अनंतकाल से है। उसका अभाव कैसे हो उसकी विधि समयसार में है। और दशलक्षण पर्व मुख्यरूप से मुनिराज की चारित्र दशा के भेद हैं।

इसके ऊपर हुए गुरुदेव के प्रवचन छप गये हैं तो पहले थोड़ा उसके ऊपर लेना है। **आज दसलक्षण पर्व का दूसरा दिन है। कल उत्तम क्षमा धर्म का दिन था, आज उत्तम मार्दव धर्म का दिन है।** यह जरा लाइट करो न। है लाइट? **सनातन जैनधर्म के अनादि नियम के अनुसार इन भादव शुक्ल पँचमी से चतुर्दशी तक के दस दिनों को 'दसलक्षण पर्व' कहते हैं और वही सच्चा पर्युषण है। आज उत्तम मार्दव धर्म का दिन होने से** क्रोध-मान-माया और लोभ, क्रोध को जीते तो उत्तम क्षमा प्रगट होती है। मान को जीते तो उत्तम मार्दव धर्म प्रगट होता है। **'पद्मनन्दि-पंचविंशतिका' शास्त्र में से उसका वर्णन हो रहा है। उसके वर्णन के दो श्लोक हैं।**

उत्तम मार्दव अर्थात् उत्तम निरभिमानता, मान रहित की वीतरागी दशा। **सम्यग्दर्शन सहित निरभिमानता सो उत्तम मार्दवधर्म है। उत्तम क्षमा, मार्दवादि दस धर्म सम्यग्दर्शनयुक्त जीव के ही होते हैं।** चारित्र के भेद हैं ये। श्लोक है उसका। **उत्तम जाति, कुल, बल, ज्ञान, इत्यादि के अभिमान का त्याग सो मार्दव है। यह मार्दव धर्म का अंग है। जो अपनी सम्यग्ज्ञानरूपी दृष्टि से समस्त जगत को स्वप्न तथा इन्द्रजाल की भाँति देखते हैं।** ज्ञानी जगत के पदार्थों को देखते हैं लेकिन वह सब इंद्रजाल के समान दिखता है। इसप्रकार ये (पर) सब नहीं है, ऐसा हमें दिखा है, हमारे में उसका अभाव है इसलिए हम उसे देखते नहीं हैं। और इन्द्रजाल के समान है, इन्द्रजाल और स्वप्न जैसा है। आहाहा!

एक बार सोगनीजी से एक मुमुक्षु भाई ने प्रश्न किया। कि यह सब आप जो प्रवचन देते हो, समझाते हो इसप्रकार और उसमें तुम्हारी रुचि है। इसप्रकार से थोड़ी टीका की। तो (सोगानी जी) ने कहा कि यह हमें यह सपना दिखता है, जागृत अवस्था में ये कुछ दिखता नहीं है। जागृत अवस्था अलग है और स्वप्न अलग चीज है। जागृत अवस्था में तो हमारा शुद्धात्मा एक ही जानने में आता है, ये कुछ जानने में नहीं आता । ऐसा जवाब दिया उन्होंने। वही बात इसमें की है। **वे उत्तम मार्दव धर्म को**

धारण क्यों नहीं करेंगे? अर्थात् अवश्य धारण करते हैं।

निरभिमान दशा को (प्राप्त) ज्ञानी, आत्मा के आश्रय से, मान कषाय का क्षय कर डालते हैं। उपशम, क्षयोपशम और अंत में, श्रेणी में , क्षय हो जाता है। क्षपक श्रेणी मांडते हैं तब मान कषाय का, क्रोध-मान-माया और लोभ, चारों कषाय का अभाव होकर, यथाख्यात चारित्र प्रगट होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। **यहाँ मुख्यतया मुनि की अपेक्षा से कथन है। उत्तम क्षमा आदि जो दस धर्म हैं वे सम्यक्चारित्र के ही भेद हैं,** सम्यग्दर्शन-ज्ञान के भेद नहीं हैं अपितु मुनिराज को स्थिरता आती है उसके अंदर के ये भेद हैं सभी। **सम्यग्दर्शन के बिना वह धर्म नहीं होता। शरीर, मन, वाणी की क्रिया, आत्मा नहीं करता, उससे आत्मा भिन्न ही है। दया-भक्ति अथवा व्रतादि जो शुभराग है वह धर्म नहीं है, और उसीप्रकार वे धर्म में सहायक भी नहीं हैं।**

आत्मा चैतन्य स्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, दर्शन स्वरूप है। **वह विकार रहित है,** क्रोध, मान, माया और लोभ, ये सभी पराश्रित विभाव पर्याय के एक समय के धर्म हैं। वे भगवान आत्मा में नहीं हैं। **ऐसे अपने निश्चय स्वभाव की परिचय के द्वारा सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्रगट करने के पश्चात् विशेष स्वरूप स्थिरता से,**रमणता से, **चारित्र दशा प्रगट होती है, उस दशा में धर्मी जीव को ऐसी आत्म स्थिरता होती है कि जाति-कुल आदि के अभिमान का विकल्प भी नहीं उठता,** मैं पूर्व में राजा था- ऐसा विकल्प उसे हो नहीं सकता। **इसका नाम उत्तम मार्दवधर्म है।**

ऐसे किसी भी प्रकार के विभाव के विकल्प, कषाय के विकल्प, उत्पन्न होते नहीं हैं क्योंकि एकताबुद्धि टूट गई है। तीन कषाय के अभावपूर्वक स्थिरता हुई है और थोड़ा राग आता है, उसके प्रति उदास हैं। उसके प्रति उपेक्षा है। उसकी अपेक्षा उन्हें नहीं होती। ऐसी चारित्र दशा कैसे प्रगट होवे उसके लिये इस समयसार शास्त्र की रचना हुई है।

चारित्र है वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। चारित्र अर्थात् शुद्धोपयोग। पाँच महाव्रत चारित्र नहीं हैं। लेकिन शुद्धात्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक अंदर रमणता-लीनता-स्थिरता ऐसी वीतराग दशा को भगवान चारित्र कहते हैं। वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। और चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। और सम्यग्दर्शन का कारण भेदविज्ञान है। इसी भेदज्ञान की गाथा हमें लेनी है। भेदज्ञान से अभेद का अनुभव होने पर उसे आत्मा जैसा है वैसा अंतर्मुख दशा में ज्ञात हो जाता है। प्रत्यक्ष होता है। और आनंद का वेदन आता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान का लक्षण क्या? उसका चिन्ह क्या? उसकी निशानी क्या? कि आत्मा आनंद की मूर्ति है उसके अंदर लीन होने पर, उसे अवस्था में, पर्याय में, आत्मा में रहा हुआ आनंद जो शक्तिरूप से है, वह पर्याय में थोड़ा व्यक्त हो जाता है। नमूना आता है। जैसे कि शक्कर की बोरी, उसके आठ सौ- नौ सौ रुपये जो भाव हों (वे) भाव। तो पूरी बोरी लेने जाये,(तो दुकानवाला) उसे दो दाने नमूने के चखाता है, कि इस जाति की शक्कर है खांड, शुगर (sugar)। वह नमूना चखकर कहता है कि यह लो आठ सौ रूपये, और पूरी बोरी भेज देना। एक सैम्पल, दो दाने, लेकिन जाति नमक की नहीं है। नमक भी सफेद होता है और खाद भी सफेद होती है, वह भी दानेदार होती है। शुगर जैसी ही लगती है। ये खाद भी नहीं है और नमक भी नहीं है। मुंह में दो दाने रखे, पूरी बोरी भेज देना, बस!

उसीप्रकार, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान का कारण भेदविज्ञान है। जिस भेदविज्ञान में यहाँ मुख्यरूप से अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा और इन्द्रियज्ञान, दोनों ही परस्पर सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। उसमें कथंचित् भिन्न-अभिन्न लागू (नहीं) पड़ता। जिसप्रकार राग सर्वथा भिन्न है, पुण्य-पाप के परिणाम, उसमें कथंचित् भिन्न-अभिन्न नहीं आता। क्योंकि जाति दोनों की अलग है। एक चेतन और एक जड़। जैसे राग जड़ है, आत्मा की जाति से उसमें अलग लक्षण है। वह सामान्य का विशेष नहीं है।

उसीप्रकार, अनादिकाल से आत्मा को भूला हुआ आत्मा, वह इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानकर बैठ गया है। आहाहा! किन्तु आचार्य प्रभु फरमाते हैं कि इन्द्रियज्ञान भगवान आत्मा से सर्वथा भिन्न है। सर्वथा भिन्न इसीलिये है, जैसे राग आत्मा के आश्रय से नहीं होता और राग आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता और राग आत्मा में व्यय नहीं होता। ऐसे जिसप्रकार राग पराश्रित है, उसीप्रकार इंद्रियज्ञान, पाँच इन्द्रिय और छठ्ठे मन का जो उघाड़ है, वह ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है।

जिसप्रकार राग आत्मा के आश्रय से नहीं होता उसीप्रकार इन्द्रियज्ञान (भी) आत्मा के आश्रय से नहीं होता। वह ज्ञेयाश्रित है। राग कर्म के आश्रित है और इन्द्रियज्ञान ज्ञेय के आश्रित है। इसलिए वह इन्द्रियज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता। वह इन्द्रियज्ञान आत्मा में अभेद नहीं होता। और आत्मा के आश्रय से नहीं होता। इसलिए भगवान आत्मा और आत्मा के ज्ञान से (इन्द्रियज्ञान) सर्वथा भिन्न है। आत्मा से तो भिन्न है किन्तु जिस उपयोग लक्षण में आत्मा जानने में आता है, ऐसे उपयोग में भी इन्द्रियज्ञान का अभाव है।

द्रव्यस्वभाव में तो अभाव है तीनों काल, लेकिन एक उपयोग लक्षण है जिसमें भगवान आत्मा बालगोपाल सबको जानने में आ रहा है। और वह उपयोग आत्मा से अनन्य है। वह कथंचित् अभिन्न है। जैसे इन्द्रियज्ञान सर्वथा भिन्न है, ऐसे ही जिसमें आत्मा अनुभव में आता है ऐसा जो ज्ञान, आहाहा! वह सर्वथा भिन्न नहीं है। वह कथंचित् अभिन्न है। उपयोग से आत्मा अनन्य है। उपयोग से आत्मा अनन्य इसीलिए है कि उस उपयोग में उपयोग जानने में आता है। उपयोग में उपयोग क्यों जानने में आता है? क्योंकि वह उपयोग में है इसलिए जानने में आता है। और रागादि उपयोग में नहीं है इसलिए उपयोग में राग जानने में नहीं आता। आहाहा! राग का करना तो बहुत दूर रहा, किन्तु जो जिसमें नहीं है वह जानने में (भी) नहीं आता। और जो जिसमें है वह जानने में आए बगैर रहता नहीं। आहाहा! यह इन्द्रियज्ञान और आत्मा के बीच के भेदज्ञान की गाथा ली है।

दो हजार वर्ष पहले कुंदकुंदाचार्य समर्थ आचार्य हुए, जिनका तीसरा नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने कलम चलायी और कहते हैं कि किसी का भी आत्मा, जगत के सभी जीवों की मैं बात करता हूँ। किसी का भी आत्मा पाँच इन्द्रियों के विषय को जानता नहीं है। आत्मा तो नहीं जानता, लेकिन आत्मा का एक लक्षण, उपयोग प्रगट होता है, वह भी स्पर्श-रस-गंध-वर्ण को नहीं जानता। क्योंकि स्पर्श-रस-गंध-वर्ण (का) वह उपयोग में अभाव है। उपयोग के बाहर वस्तु है, जड़, पुद्गल के परिणाम हैं। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण और शब्द, वे आत्मा में तो नहीं हैं, जड़भाव हैं। लेकिन जिसमें आत्मा जानने में आता है ऐसे उपयोग में भी सर्वथा भिन्न हैं। अब, उपयोग में भिन्न हैं तो शुद्धोपयोगदशा प्रगट होती है, उसमें तो भिन्न ही होते हैं। उसमें प्रश्न ही नहीं है।

आशीष और निर्मल आये हैं या नहीं? आशीष तो है। आहाहा! सभी के ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आता है। मुझे जाननहार जानने में आता है। अरे! स्वभाव के पक्ष में तू आजा तो स्वभाव की प्राप्ति हुये बिना रहेगी नहीं। उपयोग में उपयोग है। ज्ञान में ज्ञायक है। ज्ञान में रागादि या देहादि, कर्म-नोकर्म इसमें नहीं हैं। आहाहा! और जिसे स्पर्श-रस-गंध-वर्ण जानने में आते हैं उनके लक्षपूर्वक वह अन-उपयोग हो गया, अज्ञान उपयोग हो गया, इन्द्रियज्ञान हो गया। वह स्वभाव को भूल गया। और जिसे जानता है उसे अपना माने बगैर रहता नहीं है।

फैक्टरी को जानता है तो फैक्टरी मेरी। दुकान को जाना तो दुकान मेरी। दुकान में, हमने दुकान का सामान्य कथन किया। किसी की कोई दुकान, किसी की कोई दुकान, उसका कुछ नहीं। सूरूभाई! यह दुकान मेरी है और यह बराबर वाले की दुकान मेरी नहीं है, दो विभाग किये उसने। आहाहा! यह मेरा और यह तेरा इसप्रकार परपदार्थ में दो हिस्से नहीं हैं। वे सभी पराई वस्तुएं हैं। वे वस्तु तो पराई हैं लेकिन उनको जाननेवाला, वह ज्ञान मेरे से सर्वथा भिन्न है। इसलिए परपदार्थ को जानता नहीं है, आहाहा! और परपदार्थ को जाननेवाले ज्ञान को भी मैं जानता नहीं हूँ। मैं तो जिसमें आत्मा जानने में आता है ऐसे ज्ञान को जानता हूँ अथवा अभेद से आत्मा को जानता हूँ।

दस लक्षण पर्व हैं न यह तो। अजमेराभाई! ऊँचा माल होता है न। आहाहा! कुंदकुंदाचार्य भगवान की क्या बात करें! जैनधर्म को टिका कर रखा है। मोक्षमार्ग को टिका कर रखा है। पंचमकाल के अंत तक रहेगा यह। अब दस गाथा के ऊपर से बात की। अब दस गाथा मूल लेते हैं। आहाहा! ३७३ से ३८२ तक।

रागादि से तो भिन्न आत्मा है। यह बात तो जिनागम में, द्रव्यानुयोग में जगह-जगह हर ठिकाने पर है। राग से आत्मा भिन्न है यह बात तो स्थान-स्थान पर रही हुई है। लेकिन जैसे राग आस्रव तत्त्व है ऐसे इन्द्रियज्ञान भी आस्रव तत्त्व है। वह संवर तत्त्व नहीं है। जीव तत्व तो नहीं है, लेकिन संवर तत्व भी नहीं है। संवर का लक्षण उसमें नहीं है। अतः इन्द्रियज्ञान से आत्मा भिन्न है, उसके भेदज्ञान की गाथायें कम हैं। हैं सही, लेकिन जितनी "राग से आत्मा भिन्न है", उसकी बात जितनी प्रचलित है उतनी यह बात प्रचलित नहीं है। हैं तो सही। ज्ञानी लोग कह गये हैं। गुरुदेव ने भी इन्द्रियज्ञान से भेदज्ञान करने की गाथायें गिनकर व्याख्यान (किये हैं) जो छप गये हैं।

लेकिन चलते-फिरते इन्द्रियज्ञान से भिन्न आत्मा है, उसका विचार करने का काल अब पका है। राग से तो आत्मा भिन्न है लेकिन राग को जाननेवाले ज्ञान से भी आत्मा (भिन्न है)। अरे! वह तो दूर रहो, दुकान और फैक्टरी को जाननेवाला ज्ञान, उससे तो आत्मा भिन्न ही है। आहाहा! लेकिन यह तीर्थंकरों की प्रतिमा, भगवान महावीर की प्रतिमा होती है, चौबीसवें तीर्थंकर हमारे अथवा विहरमान बीस तीर्थंकरों में, सीमंधर भगवान की प्रतिमा हो , उसको जाननेवाला ज्ञान आत्मा का नहीं है। वे परमात्मा तो मेरे नहीं हैं क्योंकि मेरा परमात्मा तो यहाँ (मेरे में) विराजमान है। वे (तीर्थंकर) व्यवहार से परमात्मा हैं। उनके दर्शन रोज करने का मुझे भाव आता है। किन्तु उनके प्रति जो शुभराग होता है वह मेरा नहीं है। यह तो ठीक, किन्तु उनको जाननेवाली जो चक्षुइन्द्रिय, बहिर्मुख ज्ञान है, जिसमें प्रतिमा ज्ञात होती है और इस में आत्मा ज्ञात नहीं होता, वह ज्ञान मेरा नहीं है। अरे! वह तो ठीक किन्तु साक्षात् तीर्थंकर

भगवान विराजमान हों, इन्द्र और देव उनकी सभा में हों और गौतम गणधर आदि उनकी उपस्थिति हो और उनके सामने इन्द्रियज्ञान देखता है लेकिन आत्मा उनके सामने देखता (नहीं है)।

आत्मा अपने ज्ञान को छोड़कर, वह परपदार्थ को जानने जाता नहीं है। और जो पर को जानता है वह ज्ञान मेरा नहीं है। आहाहा! ज्ञान और ज्ञान के बीच का भेदज्ञान है। ज्ञान से ज्ञान भिन्न है। निश्चय ज्ञान से व्यवहार ज्ञान भिन्न है। आहाहा! ऐसी अद्‌भुत बात! ऐसी बात आज से दो हजार वर्ष पहले, कुंदकुंदाचार्य भगवान ताड़पत्र में लिखकर गये हैं। उसमें हमारा नाम है ऊपर। शास्त्र खोला, जो खोलता है और पढ़ता है उसका। उसके पढ़ने में आता है नाम। जो शास्त्र बंद रखता है अलमारी में, उसमें उसका नाम तो होता है लेकिन खोलकर पढ़े तो, तो उसका नाम होता है अंदर। लेकिन पढ़े ही नहीं। लिखा हुआ तो नाम है उसमें, लेकिन उसको ख्याल नहीं आता। लेकिन जो आँख उघाड़कर देखता है और आत्मा की रूचिपूर्वक पढ़ता है, अभ्यास करता है, ओहो! यह तो धर्म पिता का पत्र मेरे लिए आया है। ये तो मुझे ही कहते हैं। आहाहा!

कि इन्द्रियज्ञान भिन्न है और अतीन्द्रियज्ञान (मयी) भगवान आत्मा उससे सर्वथा भिन्न है। इन्द्रियज्ञान के द्वारा जानने का काम आत्मा नहीं करता है। कर सकता नहीं। "इन्द्रियज्ञान के द्वारा मैं जानता हूँ," इसप्रकार ज्ञेय और ज्ञायक की एकता की उसने, (यह) मिथ्यादर्शन है, मिथ्याज्ञान है। आहाहा! इन्द्रियज्ञान भले पर को जाने लेकिन मैं इन्द्रियज्ञान के द्वारा, द्वारा अर्थात् 'साधन'- करण। रमेश, तो अभ्यासी हैं भाई। आहाहा! उस भिन्न साधन के द्वारा आत्मा पर को जाने ऐसा तो आत्मा का स्वभाव नहीं है। और अभिन्न साधन के द्वारा आत्मा को ही जाने और पर (को) न जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। अलौकिक अपूर्व बात है। आत्मा की आराधना के दिवस हैं न? इन्द्रियज्ञान मेरा नहीं है। अब, इन्द्रियज्ञान मनुभाई, तुम्हारा नहीं है, तो इंद्रियज्ञान जिसको जानता है वह चीज तुम्हारी कहाँ से होगी? इन्द्रियज्ञान ही, यदि आत्मा की प्रॉपर्टी नहीं है; इन्द्रियज्ञान आत्मा की प्रॉपर्टी नहीं है तो यह प्रॉपर्टी किसकी होगी? धीरूभाई! आहाहा! अरे! इन्द्रियज्ञान से आत्मा भिन्न है। देख ले न, तुझे जानने में आ जायेगा! अरे! जानने में आ ही रहा है! अकेला इन्द्रियज्ञान प्रगट नहीं होता, बल्कि उसका (आत्मा का) लक्षण उपयोग भी साथ में प्रगट होता है। और उस उपयोग में बालगोपाल सबको, उसमें तू (भी) आ गया। तुझे जानने में आता है। इसप्रकार। दूसरे को जानने में आता है ऐसा नहीं लेना। मुझे जानने में आता है। कब जानने में आता होगा? स्वाध्याय मंदिर में आते हैं तब? दुकान पर आते हैं तब नहीं जानने में आता? ऐसा होगा? चौबीसों घंटे (जानने में आता है)। आहाहा!

गुरुदेव तो सब कुछ दे गये हैं लेकिन इसका ध्यान खिंचता नहीं है। उसमें श्रीगुरु क्या करें? आहाहा! ज्ञानी कोई बात छुपाते नहीं। आहाहा! अरे! (जब) ऊँचे न्याय आते हों और कोई पास में खड़ा हो, तो तुरंत बुलाकर बिठाकर कह देते हैं। कि सुन! यह विचार मुझे आया है। आहाहा! वे नहीं कहते तब तक उनके पेट में दुःखता है, चैन नहीं पड़ता। आहाहा! वे कह ही देते हैं। कि मैं कहूँगा तो मेरे शिष्य मेरे से आगे बढ़ जायेंगे, ऐसा ज्ञानी को नहीं होता। वे न्याय छुपाते हों तो वे ज्ञानी नहीं हैं। ये छुपाने की बातें नहीं हैं। ये तो प्रसिद्ध करने की बातें हैं।

कि "इन्द्रियज्ञान वह ज्ञान नहीं है" डंके की चोट पर। नाम ही ऐसा रखा किताब का कि

'इन्द्रियज्ञान वह ज्ञान नहीं है'। पहले एक हजार कॉपी छपी थी। तुरंत ही खप गई। एक पार्टी का लंदन से फोन आया कि एक लाख रूपये में जितनी पुस्तक छपें उतनी छाप दो। जितनी छपें उतनी छापो और सबको फ्री दो। (मैंने) कहा 'तो लगभग पच्चीस सौ-तीन हजार पुस्तक छपेंगी।' कि फ्री देना। मैंने कहा कि 'फ्री नहीं, दस रूपया रखना कम से कम। भले साठ (रूपये) की पड़े, पचास की पड़े पुस्तक में।' (उन्होंने कहा) कि 'ठीक है, ऐसा ही करना।' तीन हजार पुस्तकें छपायी! और चार हजार पुस्तकें हो गयी गुजराती में। और गुजराती की संख्या तो कम है, इसलिए धीरे धीरे खपती हैं। यहाँ पर खपाने को पाँच सौ पुस्तकें खप जाती आज। ज्यादा होती तो खप जाती।

इसप्रकार हिंदीभाषी भाइयों ने भी एक हजार पुस्तक छपवाई। वहाँ हिम्मतनगर में निश्चित हुआ था और एक हजार पुस्तकें छपी। ये शांति साहेब पीछे बैठे हैं वगैरह-वगैरह, सभी हिन्दी भाई हैं। आहाहा! एक हजार पुस्तक में से नौ सौ पुस्तक खप गई हैं। सौ पुस्तक उनके पास रखी हुई हैं। वे तो स्वाध्याय के लिए रखी हैं, नहीं तो सौ भी खप जाती। लेकिन छह सौ की डिमांड आकर खड़ी है, छपवाओ-छपवाओ-छपवाओ-छपवाओ। सौ मँगाते हैं उनको तीस (किताबें) भेजते हैं। कोटा से सौ प्रतियाँ मंगायी, तो बीस या तीस मुश्किल से भेजी। कितनी?

मुमुक्षु :- बीस वहाँ से भेजी हैं।

उत्तर :- बीस वहाँ से भेजी हैं। बोलो! सौ मंगायी उन्होंने। आहाहा! अपूर्व चीज है यह तो। भेदज्ञान की पराकाष्ठा है यह। जीव लुट गया है इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानकर। है ज्ञेय, भिन्नरूप ज्ञेय है। हेयरूप ज्ञेय है। आश्रय करने के लिये उपादेय नहीं है। और प्रगट करने के लिये भी उपादेय नहीं है। ऐसी अलौकिक बात इन दस गाथाओं में है। आहाहा! उसकी जीभ से प्रशंसा हो पाये ऐसा नहीं है। आहाहा! कितनी प्रशंसा करनी उसकी?

जिस तरह से हिंदुस्तान में खलबलाहट हुई, गुरुदेव का उदय हुआ तब। समयसार-समयसार-समयसार, चारों तरफ। तो वर्तमान के जो विद्वान थे वे कहीं समयसार पढ़ते नहीं थे। उसमें यह सोनगढ़ से चिनगारी सत्य की बाहर आयी, समयसार-समयसार-समयसार! तो लोग पंडितों से पूछने लगे प्रश्न कि पंडितजी, इस समयसार में इस गाथा का क्या अर्थ है? तो कहते कि हमने तो पढ़ा ही नहीं है। अब यह जो प्रजा पूछने लगी है तो हमें पढ़ना तो पड़ेगा ही। उसका जवाब देने के लिये उन्होंने वाँचन शुरू किया, विद्वानों ने, हों! विद्वान बड़े- बड़े डिग्रीवाले। कोई शास्त्री और कोई आचार्य, उनकी बात चलती है, साधारण की बात नहीं। आहाहा! बाद में कैलाशचंदजी पंडित लिखते हैं कि यह गुरुदेव का उपकार है। (उनसे) उदय हुआ समयसार का। और हमें यह पढ़ने की जरूरत पड़ी। (लोग) पूछने लगे इसलिए। पर अलौकिक भेदज्ञान का शास्त्र है। बहुत प्रशंसा करते थे।

इस तरह यह **'इन्द्रियज्ञान वह ज्ञान नहीं है'** अपनी पुस्तक के फैलाव के बाद, ए पंडितजी! यह इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है, वो समझाओ न जरा? लेकिन उन्होंने पढ़ा ही न हो, तो कहाँ से समझायें? इसलिए शांतिसागर को लिखते हैं कि भाई! एक कॉपी भेजना। हमारे यहाँ लोग पूछते हैं, अब हमें तैयारी करनी पड़ेगी। आहाहा! ऐसा युग आनेवाला है। थोड़ा-थोड़ा शुरू हो गया है। समाज पूछेगा, कि इन्द्रियज्ञान ज्ञान है या अज्ञान? ज्ञान तो कह सकते नहीं क्योंकि उसमें तो आत्मा जानने में नहीं आता।

आहाहा! एक युग आनेवाला है। लगभग दो वर्ष लगेंगे, वरना दो वर्ष में तो भड़ाका होगा। चिनगारी बाहर निकल गई है। एक हजार पुस्तक हिंदी में छप गई हैं। हिंदी में तो दस हजार छपें तो भी कम हैं, क्योंकि हिंदी मुमुक्षु भाइयों की संख्या, गुजराती मुमुक्षुओं से बहुत ज्यादा है। और गुजराती की अपेक्षा वे बहुत मेहनती हैं। आहाहा! गुजराती तो आरामतलब, जरा प्रमादी।

मुमुक्षु :- (उनको तो) तैयार माल मिलता है न।

उत्तर :- तैयार। आहाहा! इन्द्रियज्ञान और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। सर्वथा भिन्न हैं। अतीन्द्रियज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, वह कथंचित् भिन्न-अभिन्न है। और इन्द्रियज्ञान तो सर्वथा भिन्न है। आहाहा! यह समयसार की ३१ वीं गाथा में है। बहुत सी जगह पर है। यह तो तुम्हें एक उदाहरण दिया। आहाहा! सर्वथा भिन्न, तो एकांत हो जायेगा। कि तब अनेकांत होगा! कि आत्मा ज्ञानमय है और इन्द्रियज्ञान की आत्मा में नास्ति है, उसे अनेकांत कहने में (आता है)। अस्ति-नास्ति अनेकांत भेदज्ञानपरक है। अब यह मूल गाथा फिर रह जाएगी इसलिए अब यह (विषय) लंबा नहीं होगा।

दो गाथा चली हैं। आज तीसरी गाथा (३७५) **अशुभ अथवा शुभ शब्द**। शब्द तो ज्ञेय है। शब्द में शुभ या अशुभ ऐसी कोई छाप नहीं है। लेकिन कोई शब्द उसे प्रिय लगता है तो उसे शुभ कहा जाता है, और अप्रिय लगता है तो उसे अशुभ कहा जाता है। यहाँ के परिणाम का आरोप उस शब्द के ऊपर दिया जाता है। ज्ञेय कहीं अच्छा-बुरा नहीं है। ज्ञेय तो ज्ञेय ही है। ज्ञेय के दो विभाग नहीं हैं। लेकिन यहाँ उसे मन से अच्छा लगता हो तो उसे शुभ शब्द कहा जाता है और अच्छा नहीं लगता हो तो उसे अशुभ शब्द कहा जाता है।

अशुभ अथवा शुभ शब्द तुझसे यह नहीं कहता, देखना आचार्य भगवान की शैली। अज्ञानी को कहते हैं कि हे भव्य आत्मा! कोई भी शब्द, प्रिय या अप्रिय तुझे लगता हो, तो **शब्द तुझसे यह नहीं कहता कि 'तू मुझे सुन';**। शब्द कहीं ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे सुन क्योंकि उसमें इस प्रकार से कहने की शक्ति नहीं है। पुद्गल शब्दरूप परिणमे वह उसकी शक्ति है लेकिन दूसरों को ऐसा कहने की शक्ति नहीं है कि **'तू मुझे सुन'**।

क्या कहा? शब्द पुद्गल की अवस्था है। वह शब्दरूप से परिणमता है यह बात सच है। लेकिन कोई शब्द रूप से परिणमे पुद्गल, तो वह शब्द तुझसे यह नहीं कहता कि **'तू मुझे सुन'** उसमें कहने की शक्ति का ही अभाव है। आहाहा! उसमें आत्मा को कहने की शक्ति का अभाव है। और आत्मा में उसे जानने की शक्ति का अभाव है। तब (प्रश्न होता है कि) मैं नहीं सुनता तो कौन सुनता है? आहाहा! वह सुननेवाली चीज अलग है और आत्मा को जाननेवाला ज्ञान (अलग है)। यह इसमें कहेंगे अभी। आहिस्ता-आहिस्ता जरा।

शब्द तुझसे यह नहीं कहता कि 'तू मुझे सुन' ;एक साइड। सामने की तरफ से बात की। पुद्गल ऐसा कहता नहीं कि तू मुझे सुन। ऐसा नहीं कहता। आहाहा! इसप्रकार चले जाते हों हम और मोटर का हॉर्न बजता हो, वह शब्द की पर्याय है न! हॉर्न बजा, भू-भू हुआ, तो उसने तुम्हें किसी को कहा कि मुझे सुन? मैंने तो देखा नहीं कि कोई शब्द कहता हो कि मुझे सुन। ऐसा कहने की शक्ति का उसमें अभाव है। बात जरा सूक्ष्म तो है। यह सामने की साइड से बात की है। कि **शब्द नहीं**

कहता कि 'तू मुझे सुन'!

अब यह (अपनी) साइड से बात करते हैं। समझाते हैं। **और आत्मा भी**, वह (शब्द) **यह नहीं कहता कि 'तू मुझे सुन'। और आत्मा भी**अपने को जानना छोड़कर, जाननहार को जानना छोड़कर ज्ञान उसे जानने जाये, ऐसा बनता ही (नहीं है)। वह ज्ञान तो स्वयं को ही जाना करता है। अपने को जानना छोड़े तो उसका (पर का) जानना हुआ, ऐसा कहा जाये। लेकिन आत्मा तो अपने को जानना छोड़ता ही नहीं है। सभी के पास यह स्थिति है। आहाहा! ऐसा जाने उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो जाये, ऐसी चीज है। **आत्मा भी, (अपने स्थान से च्युत होकर)**, अर्थात् अपने को जानना छोड़कर, जाननहार को जानना छोड़कर, अरे! जाननहार को जानना यदि ज्ञान छोड़े, तो ज्ञान और ज्ञायक कोई रहता नहीं है। आहाहा! यह प्रकाश का उदाहरण आयेगा बाद में टीका में। आहाहा!

दीपक का प्रकाश दीपक के प्रकाश को छोड़कर घट-पट को प्रकाशित करने नहीं जाता। इसलिए प्रकाशित करता नहीं है। आहाहा! यह टीका में आयेगा। यहाँ तो कहते हैं ज्ञानानंद भगवान आत्मा और उसके अंदर एक जाननेवाला ज्ञान भी प्रगट होता है। वह ज्ञान जानता है और ज्ञायक उसमें जानने में आता है। ऐसा फंक्शन, ऐसी क्रिया, सभी आत्माओं में निरंतर हो रही है। वह उपयोग आत्मा को तन्मय होकर जाना करता है। और उस उपयोग में जो नहीं है उसको जानता (नहीं है)। है उसको जानता है, नहीं है उसको जानता (नहीं है)।

दीपक का प्रकाश, प्रकाश में दीपक है इसलिए दीपक को प्रसिद्ध करता है लेकिन घटपट को प्रसिद्ध करता (नहीं है)। प्रकाशित करता ही नहीं है क्योंकि घटपट का उसमें अभाव है। 'जिसका जिसमें अभाव होता है उसको प्रसिद्ध करता नहीं है'। आहाहा! ज्ञाता-ज्ञेय और कर्ता-कर्म एक पदार्थ में होता है। दो पदार्थ के बीच में ज्ञाता-ज्ञेय है नहीं। वह भ्रांति है। मैं ज्ञाता और ये छह द्रव्य मेरे ज्ञेय, यह तो भ्रांति हो गई है तुझे। तेरे वे ज्ञेय नहीं हैं। उन्हें ज्ञेय मानेगा तब तक मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान है।

निश्चय से ज्ञेय नहीं तो कोई बात नहीं, लेकिन व्यवहार से ज्ञेय है या नहीं? व्यवहार से ज्ञेय अर्थात् क्या? आत्मा व्यवहार से छह द्रव्यों को जानता है। अर्थात् क्या? उसका अर्थ समझाओ। कि जानता है इन्द्रियज्ञान और उपचार आया कि आत्मा उसे जानता है। उस उपचार के झूठे कथन को सच्चा माना कि मैं उसे जानता हूँ। यह भ्रांति है बड़ी तेरी।

यह जानने में भूल। एक करने की भूल और एक जानने की भूल। दो भूल हैं। या तो राग को मैं करता हूँ ऐसा मानता है और या फिर राग को मैं जानता हूँ ऐसा मानता है। जानता है ज्ञान स्व को। आत्मा का ज्ञान जिसका है उसे जानता है। और मानता है, मानने में आ गया है कि मैं पर को जानता हूँ। वह ज्ञान का अज्ञान हो गया। आहाहा! उसे आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता।

शब्द कहते नहीं है कि '**तू मुझे सुन**', और आत्मा भी अपने को जानना छोड़े तो उसे जानने जाये न? अपने को जानना तो छोड़ता नहीं। अपने को जाना ही करता है निरंतर। बाल-गोपाल सर्व को सदाकाल, सर्व को, छोटे-बड़े सभी आ गये। सदाकाल सभी काल मात्र अनादि अनंत। सदाकाल आया न? अनुभूति स्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! उसका अनुभव निरंतर हुआ करता है। अनुभव अर्थात् उसका ज्ञान निरंतर (हुआ करता है)। ज्ञान में ज्ञायक जानने में आया करता है। एक

समय ऐसा नहीं होता कि आत्मा के ज्ञान में आत्मा जानने में न आये।

वह सामान्य उपयोग है। उस उपयोग से आत्मा अनन्य है। इसलिए उस उपयोग में आत्मा जानने में आ रहा है सभी को। और जानने में आ रहा है, मुझे जाननहार जानने में आता है। इसप्रकार परोक्ष में आने के पश्चात, यदि प्रत्यक्ष होता है तो शुद्धोपयोग हो जाता है। उस पहले उपयोग में आनंद नहीं था लेकिन दूसरे उपयोग में आनंद आता है। किन्तु पहले उपयोग में पक्ष आता है। दूसरे उपयोग में पक्षातिक्रांत होता है। अभी इस उपयोग में आत्मा जानने में आता है ऐसे स्वभाव के पक्ष में भी नहीं आता और मुझे यह जानने में आता है- यह जानने में आता है। जो भिन्न है वह तुझे जानने में आता है और जो उपयोग से अभिन्न है वह तुझे जानने में नहीं आता? आहाहा! एक अमितगति आचार्य हैं। समर्थ आचार्य हो गये हैं। योगसार उन्होंने लिखा है। दो प्रकार के योगसार हैं। एक योगीन्दुदेव का योगसार। उन्होंने परमात्मप्रकाश की रचना की है। योगसार के १०८ दोहे हैं। उसमें तो श्लोक बहुत हैं। अमितगति आचार्य के योगसार में। उन्होंने अज्ञानी जीवों को आसान में आसान उपाय बताया है। जयपुर में डिग्री प्राप्त न की हो, क, ख, ग, घ, न सीखा हो, आता न हो, A-B-C-D तो कहाँ से आयेगी? जहाँ गुजराती क, ख, न आता हो तो। अंगूठा छाप हो। समझ गये? कुछ भी पढ़ा हुआ न हो और उसे अनुभव हो जाता है।

कि इस समयसार की तुम गाथा.., समयसार शब्द पढ़ना आता है? कि साहेब! वह पढ़ना नहीं आता। मुझे पढ़ना नहीं आता है। पढ़ना नहीं आता, लिखना नहीं आता। और उसके ऊपर करुणा आ गई आचार्य भगवान को, कि सभी जीव प्राप्त करो! आहाहा! ऐसी करुणा में कलम चलायी उन्होंने। उसमें एक दृष्टान्त दिया। आत्मा का अनुभव जल्दी हो जाये उसके लिये, एक सरल दृष्टान्त और सभी को अनुभव में रोज आता है ऐसा दृष्टान्त।

कि सुन! जैसे दीपक है न? दीपक, दीपक है वह द्रव्य कहलाता है। उसे द्रव्य कहा जाता है। और उसमें से प्रकाश फैलता है वह उसकी पर्याय कहलाती है। प्रकाशक, दीपक का नाम प्रकाशक, प्रकाश का करनेवाला प्रकाशक। और उसमें से जो तेज निकला उसका नाम प्रकाश। उसका नाम प्रकाश। प्रकाशक और प्रकाश। द्रव्य का नाम है प्रकाशक और जो प्रकाश फैला, उसका नाम, उसकी पर्याय है, प्रकाश। उस प्रकाशक में से प्रकाश निकलता है या अंधेरा निकलता है?

मुमुक्षु :- प्रकाश।

उत्तर :- कि अंधेरा तो निकलता ही नहीं। इतनी बात तो निश्चित हो गई? हें! फिर उससे आगे कहते हैं। उस प्रकाश में तुझे घटपट जानने में आते हैं, जो प्रकाश से सर्वथा भिन्न हैं, प्रकाश से। वह तो सभी को अनुभव है। रात को सोफासेट को वह प्रकाशित करता है। लेकिन सोफासेट को प्रकाशित करे, ऐसा नहीं होता, वह तो सर्वथा भिन्न है। कालाजी! यह तो सीधी बात है। यह दृष्टान्त तो समझ में आये ऐसा है। अब कहते हैं कि जो प्रकाश से सर्वथा भिन्न है, वह तुझे जानने में आता है। वह तुझे (जानने में आता है)? और प्रकाश तुझे जानने में नहीं आता? हमें तो आश्चर्य होता है!

(शिष्य:-) कि 'चलो साहेब! वह नहीं जानने में आता। प्रकाश जानने में आता है।' प्रकाश तुझे जानने में आता है न? तो प्रकाशक तुझे जानने में आ जायेगा। क्योंकि प्रकाश और प्रकाशक कथंचित्

अभिन्न हैं। दृष्टान्त आसान है। इसमें न समझ में आये? प्रकाश के द्वारा घटपट तुझे (जानने में आते हैं) जो भिन्न हैं, दीपक से भिन्न और दीपक के प्रकाश से भी भिन्न। कथंचित् भिन्न या सर्वथा, मनुभाई?

मुमुक्षु :- सर्वथा भिन्न।

उत्तर :- सर्वथा भिन्न। अब जो सर्वथा भिन्न है वह तुझे ज्ञात होता है और प्रकाश तुझे ज्ञात नहीं होता? अतः तुझे प्रकाश ज्ञात होता है ऐसा ले। दीपक न जानने में आये अभी थोड़ी देर तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुझे जानने में आ जायेगा। हमें विश्वास है। यदि प्रकाश में आयेगा तो प्रकाशक जानने में आ ही जायेगा। क्योंकि प्रकाश और प्रकाशक एक वस्तु है। एक सत्ता है, दो सत्ता नहीं है। पदार्थ अपेक्षा से एक सत्ता है। नय अपेक्षा से दो सत् अलग-अलग हैं। वह अलग विषय है। यह तो एक अभेद है।

प्रकाश को जानते ही प्रकाशक तुझे जानने में आ जायेगा और तेरा लक्ष घड़े के ऊपर से छूट जायेगा कि यह घड़ा जानने में आता है-घड़ा जानने में आता है-घड़ा जानने में आता है, यह छूट जायेगा। पहले कहता था कि यह लाइट हुई, ट्यूबलाइट। फिर चली गई थी। अब क्या जानने में आता है? कि प्रकाश। कि अंधेरा था तब वह परपदार्थ नहीं जानने में आता, यह बात सही है। प्रकाश हुआ तो यह पदार्थ क्या नहीं जानने में आता? पप्पाजी! मुझे यह सोफासेट ज्ञात नहीं होता। मुझे तो प्रकाश ज्ञात होता है। तो तेरे गुरु ने ऐसा सिखाया है? कि हाँ! हमारे सोनगढ़ के संत ने ऐसा सिखाया है। आहाहा! जो प्रकाश जानने में आता है, यहाँ पर पूर्णविराम किया या आगे भी कुछ कहा? कि मुझे तो ऐसा कहा कि प्रकाश जानने में आने पर प्रकाशक (जानने में आ जायेगा)। और मुझे तो जानने में आ गया। तुम्हें जानने में आये या न जानने में आये वह तो तुम जानो। ऐसे आसान में आसान उदाहरण के द्वारा (समझाया)। अब हमें आत्मा के ऊपर उतारना है यह दृष्टान्त। दृष्टान्त तो दृष्टान्त के लिये ही था। सिद्धांत को आसान करने के लिये।

अब, आचार्य भगवान कलम चलाते हैं कि यह ज्ञायक आत्मा है न? आहाहा! जानने-देखने की इसमें दशा होती है। ज्ञान उपयोग और दर्शन उपयोग, सामान्य और विशेष। दो प्रकार के उपयोग प्रगट होते हैं। जीव हो और उपयोग प्रगट न हो, ऐसा होता नहीं। लक्ष्य हो और लक्षण न हो ऐसा हो नहीं सकता। कि हाँ! सही है। ज्ञायक आत्मा द्रव्य है और उसमें एक प्रगट पर्याय होती है जानने-देखने की क्रिया। जैसे प्रकाशक और प्रकाश, इसीप्रकार ज्ञायक और ज्ञान। ज्ञायक-ज्ञान और तीसरा शब्द है ज्ञेय। उसमें था प्रकाश्य, प्रकाश का विषय। वह प्रकाश्य कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं ज्ञायक आत्मा द्रव्य है। और उसमें जानने-देखने की दशा प्रगट होती है प्रति समय, सभी को, हों! आहाहा! वह जानने-देखने की दशा प्रगट होती है उसका नाम है ज्ञान। आत्मा का नाम है ज्ञायक- द्रव्य। और ज्ञान प्रगट होता है, उसका नाम ज्ञान है। प्रगट होता है ज्ञान। और बाहर के पदार्थ जो ज्ञात होते हैं उस ज्ञान में उनका नाम है ज्ञेय- उनका नाम है ज्ञेय।

अब समझाते हैं, कि तेरे में ज्ञान तो होता है? कि हाँ साहेब! मेरे में ज्ञान होता है। तो उसमें क्या जानने में आता है? कि ये (पर पदार्थ) सब जानने में आते हैं। ठीक! अब मैं तुझे प्रश्न करता हूँ कि जो ज्ञान से भिन्न है, ये सभी पदार्थ, तो ज्ञान से भिन्न हैं न? रागादि दुःख, और यह शरीर और (सब)। जो

भिन्न हैं वे तुझे जानने में आते हैं और जिसकी सत्ता में वे जानने में आते हैं वह तुझे जानने में नहीं आता ज्ञान? विचार करने लग गया। सही बात है। ज्ञान को जाने बिना, ज्ञेय को जानना (ऐसा) व्यवहार भी उत्पन्न होता नहीं है। क्या कहा? रमेश!

मुमुक्षु :- ज्ञान को जाने बिना ज्ञेय को जानने का व्यवहार ही उत्पन्न नहीं होता।

उत्तर :- कहाँ से व्यवहार उत्पन्न हो? यहाँ जो ज्ञान ही न प्रगट हो, यहाँ अंधेरा हो (तो ज्ञेय को जानने का व्यवहार उत्पन्न नहीं होता)। यह जैनदर्शन! एकदम न्याय, लॉजिक, आगम, युक्ति और अनुभव से सिद्ध हो ऐसा है। हम कहते हैं इसलिए मान लो ऐसी बात नहीं है। तब तुझे परपदार्थ जो भिन्न हैं वे तुझे जानने में आते हैं और जो उन्हें प्रसिद्ध करता है, ज्ञान, वह तुझे जानने में नहीं आता? हमें तो आश्चर्य होता है। तब कहता है कि प्रभु! आपकी बात कुछ मुझे गले से उतरी। क्योंकि ज्ञान ज्ञान को जाने बिना ज्ञेय को कैसे जाने? ज्ञान ज्ञान को जानकर ज्ञेय को जानता है ऐसा व्यवहार अथवा भ्रांति-अज्ञान होता है। क्या कहा?

इसलिए ऊर्ध्वरूप से तो ज्ञान ही जानने में आता है, सबको। लेकिन ज्ञान को भूल गया, अब उसे ज्ञेय जानने में आते हैं , ऐसी भ्रांति होती है। भ्रांति छुड़ाने के लिये अब कहते हैं कि ज्ञान से जो भिन्न पदार्थ है वह तुझे जानने में आता है? कि हाँ साहेब! वह जानने में आता है। अब मैं तुझे कहता हूँ जो भिन्न है वह तुझे जानने में आता है, लेकिन भिन्न पदार्थ जिसमें ज्ञात होता है, प्रतिभास जिसमें होता है, ज्ञान में, वह तुझे जानने में नहीं आता? कि हाँ! यह बात कुछ विचार करने जैसी है। अर्थात् ज्ञेय के ऊपर से लक्ष छूटा, ज्ञेय जानने में आता है ऐसा जो पक्ष हो गया था, अभिमान का। ज्ञेय जानने में नहीं आता, बात सच्ची है। ज्ञान जानने में आता है मुझे हों! वह ज्ञेय में से खिसक गया और ज्ञान में आ गया। वह ज्ञेय बदलने लगा। अभी बदल जायेगा। क्या कहा?

ज्ञेय बदलने लगा। वह (पर) मुझे जानने में आता था, उस ज्ञेय का पलटाव होने लगा। पलटने लगा। अभी सर्वथा नहीं पलट गया। अभी पलट जाएगा, दो मिनट में। ज्यादा देर लगेगी (नहीं)। वह तो भिन्न पदार्थ है, वह तो जानने में आता ही नहीं, मुझे तो मेरा ज्ञान जानने में आता है। समझ गये? अब ज्ञान ज्ञेय होने लगा। पहले (पर)ज्ञेय-ज्ञेय होने लगता था। थोड़ा जरा यह (दिमाग) चलाना तो पड़ता है। हें? उसके बिना तो कहाँ से जानने में आये। फायदा बड़ा है। लाभ बड़ा है इसमें।

अब यह (पर) ज्ञेय नहीं है। लेकिन ज्ञान जो जानने में आता है, जो जानने में आता है वह ज्ञेय कहलाता है। जानता है वह ज्ञान और जानने में आता है वह ज्ञेय। तो ज्ञान में दो धर्म हैं, पर्याय में। ज्ञान जानता भी है और ज्ञान, वह पर्याय, जानने में भी आती है। अतः (ज्ञान) ज्ञेय होने लगा। वह (पर) ज्ञेय खिसक गया। वह खिसक गया। अंदर आया। अब अंदर अभी आ जायेगा, एकदम अंदर। अभी थोड़ा सा बाहर है। पश्चात कहते हैं, कि तुझे ज्ञान जानने में आता है? कि हाँ साहेब! ज्ञान जानने में आता है। तो ज्ञान और ज्ञायक तो अभेद हैं। वह ज्ञायक कैसे न जानने में आये? प्रकाश को जाने वह दीपक को कैसे न जाने? प्रकाश को जानता है वह दीपक को जानता ही है। क्योंकि अभिन्न है वस्तु। वह जो पहले ज्ञेय होता था, ज्ञान की पर्याय, वह पूरा आत्मा ज्ञेय हो गया। अंदर में आ गया। आहाहा!

मुझे तो जाननहार जनाता है। जब आत्मा वह ज्ञेय होता है तो जाने हुए का श्रद्धान भी उसमें आ

जाता है और अनुभूति हो जाती है। ऐसी बात। आहाहा! अपूर्व बातें जिनागम में भरी हैं। रहस्यवाली बातें। आसान में आसान, अंगूठा छाप हो, व्याकरण न आता हो। निश्चयनय और व्यवहारनय और निक्षेप और, धीरज! कुछ पता न हो। अंगूठा छाप, समझे न? क, ख, ग, घ वर्णमाला न आती हो, कि तुम तो जाननेवाले हो! कि यह (पर) जानने में आता है इसलिए जाननेवाले हो? उसको (पर को) जानते हो इसलिए जाननेवाले हो या जाननेवाला जानने में आता है इसलिए तुम जाननेवाले हो? आहाहा! ये बात तो प्रभु, मैंने अनंतकाल से सुनी नहीं थी! आज आपके श्रीमुख से सुनी। मेरे ऊपर कृपा की आपने और मुझे सुनायी और मुझे बात समझ में आ गई। बूढ़ी अम्मा को सम्यग्दर्शन हो गया, नब्बे वर्ष की उम्र में। और यदि पर जानने में आता है ऐसे पक्ष में रहे तो पंडित को भी अनुभव (नहीं) होता। हो जाता है ? बोलो? नहीं होता? नहीं! यह धीरज बहुत पढ़ता है इसलिए इसे हो जायेगा और तू रह जायेगा ऐसा नहीं है। जो आत्मा को जानता है वह ज्ञानी होता है। शास्त्र को जाने वह ज्ञानी (हो) ऐसा नहीं है। वह उसकी व्याख्या ही नहीं है। पर को जाने वह ज्ञानी - ऐसा है (नहीं)।

यदि ऐसा करोगे तो ग्यारह अंग का पाठी भी कोरा रह गया और पढ़े हुए को ही सम्यग्दर्शन होता हो, (तो)अनपढ़ को धर्म होगा (नहीं)। आहाहा! पढ़ा हुआ हो या अनपढ़ (हो), यह जाननहार जानने में आता है- उसमें आजा न! तुझे जानने में आ जायेगा। प्रत्यक्ष हो जायेगा। तुझे आनंद आयेगा! और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होने के पश्चात चारित्र भी आनेवाला है। चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का कारण भेदविज्ञान। भेदविज्ञान अर्थात् इन्द्रियज्ञान भिन्न और आत्मा भिन्न। इन दो के बीच के भेदज्ञान की गाथा है।

ॐ